International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 05-03-2025, Accepted: 30-03-2025, Published: 15-04-2025
Volume 11, Issue 2, 2025, Page No. 5-8

२१ वीं सदी की हिंदी ग़ज़लों में अभिव्यक्त आर्थिक चेतना

डॉ. विजय लोहार
हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र, मूलजी जेठा महाविद्यालय (स्वशासी), महाराष्ट्र, भारत

सारांश
हिंदी ग़ज़लों का कथ्यगत फलक यथार्थवादी, मानवतावादी और जनवादी रहा है। समाज में परिलक्षित हर तरह की विसंगति को लेकर हिंदी ग़ज़लकारों ने अक्सर बहुत– सी गज़लें लिखी गई हैं। जिससे कि हिंदी ग़ज़ल की सामाजिक प्रतिबद्धता नज़र आती है। समाज में दीखने वाली वर्गगत विषमता पर अनेक ग़ज़लकारों ने लेखनी चलाई। इसमें अमीरी गरीबी की खाई, शहर और गांव के परिवेश की सच्चाई, दूर दराज गिरि –कंदारों में निवास करने वाले आदिवासी जनजातियों का आर्थिक पिछड़ापन आदि अनेक बातों पर गज़लकार बड़े ही असरदार तरीके से अभिव्यक्त हुए हैं। आजाद भारत में अनेक क्षेत्रों में जो मोहभंग उभरा, उसको उभारने में ग़ज़लकारों ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। बिसवीं सदी के अंततक देश में अनेक तब्दीलियाँ हो रही थी। इन बदलावों के असर आगे २१ वी सदी के आंरभिक वर्षों तक देखने को मिला। इसकी आहट हिंदी ग़ज़लों में भी मिल जाती है। हिंदी ग़ज़लों में आर्थिक चेतना की बात करें तो इन ग़ज़लों में अमीर –गरीब, पूंजीपतियों की कारगुजारियां, मिल मजदूरों में आंदोलन, बंधुआ मजदूरों की पीड़ा, खेतिहर–श्रमिकों का शोषण, किसानों के भांति–भांति की परेशानियाँ, हाथों से काम करने वालों के दुःख–दर्द, बढ़ती हुई बेरोज़गारी, महंगाई की मार, पहाड़ों में गुजर करने वाले आदिवासियों के प्रश्न आदि अनेक आयामों पर ग़ज़लकारों ने यथार्थ और प्रभावशाली प्रस्तुति की है।

मूल शब्दः जनधर्मी, जनपक्षधर, विकासगामी, पूंजीपति, मोहभंग असांस्कृतिक, बुद्धिजीवी, संक्रमण काल, बाज़ार, राफ़ेल, महंगाई, भूमंडलीकरण, उदारवाद और निजीकरण आदि

"खाने को भूख मिल रही पीने को प्यास है,
इस मुल्क में तो यही एक इंतजाम है।।
गरीब पहले ख्वाब था आता कभी कभी,
अब तो गरीब अपना तकिया कलाम है।।

हनुमंत नायडू

विषय प्रवेश

ग़ज़ल एक असरदार विधा है। ग़ज़ल की मूल संवेदना प्रेम के नाजुक अहसासातों से भले ही संपृक्त हो पर आधुनिक काल की विषम हालातों को ग़ज़लों में नज़रअंदाज नहीं किया गया। ग़ज़ल का जनधर्मी होना साहित्य जगत में चर्चा का धधकता विषय रहा है। ग़ज़ल की यदि भाषाई सन्दर्भों में बात की जाय तो तमाम आलोचकों ने हिंदी ग़ज़ल को सर्वाधिक जनधर्मीय माना है। कविवर निराला जी की कुठाराघात वाली प्रवृत्ति को हिंदी के गज़लकारों ने बरक़रार रखने की प्रामाणिक कोशिश की। दुष्यंत कुमार की गज़लें आम लोगों के जीवन की पक्षधर बनकर सामने आई। उनकी रचना 'साये में धूप' ने साहित्य क्षेत्र में कोहराम मचाया। दुष्यंत ने ग़ज़ल की जिस जदीदियत से रूबरू करवाया, वह उनके क्रांतदर्शी व्यक्तित्व का नमूना था। उनके बाद भी हिंदी ग़ज़ल में उनके द्वारा दिए जनवादी भेरी का गुंजार हो रहा है। वर्तमान सदी की हिंदी ग़ज़लों में जनपक्षधरता की अनुगूँज तीव्र है, आम आदमी और देश की अन्य समकालीन की समस्या पर चिंता और चिंतन को देखा जा सकता है।

बीसवी सदी के अंतिम दशक के आरंभ में दुनिया की नवीनतम आर्थिक नीति का बोलबाला होने लगा। दुनिया के राष्ट्रों पर भूमंडलीकरण, उदारवाद और निजीकरण का जादुई आभामंडल बनने लगा। पूंजी का महत्त्व बढ़ गया आदमी का महत्त्व घट गया। समूची पहली दुनिया, दूसरी दुनिया और तीसरी दुनिया (परम विकसित, अर्धविकसित, विकासगामी) का नया मुहावरा गढ़ा गया। ऐसे में पहले से ही समाज में परिव्याप्त अमीर–गरीब वर्गों की खाई पहले से और गहराती गई। आर्थिक विषमता पहले से ज्यादा बढ़ गई। भांति–भांति की समस्याएं उठ खड़ी हुई। हिंदी ग़ज़लकार समाज की इस विद्रूपता या विसंगति को नहीं उभारता तो क्या करता? जनपक्षधर इन गज़लकारों की लेखनी में गजब की धार आ गई। बहरहाल उसका असर तो निराला के ग़ज़लों से देखा गया था, दुष्यंत की ग़ज़लों में जगह–जगह व्याप्त था वह इक्कीसवी सदी में और अधिक भास्वर हो गया। वर्तमान सदी की हिंदी गज़लों में अभिव्यक्त आर्थिक विमर्श के विविध आयाम है। उसमें मार्क्स या किसी समाजवादी सिद्धांतों का पिष्टपेषण नहीं है, वरन उनके चिंतन के विविध कोण सामने आए हैं।

देश में आज़ादी के बाद बहुत से महत्वपूर्ण कार्य किए गए। जमींदारी प्रथा का अंत, राज्यों–संस्थानों का भारत के अंदर विलीनीकरण, नए–नए उ।ागों का निर्माण, सड़के–बाँधों का निर्माण, पंचवार्षिक योजनाएँ आदि का आरंभ किया गया। नई योजनाओं के साथ अनेक वायदे और नीतियाँ देश के सामने रखी गई। स्वतंत्र भारत की स्वतंत्र जनता जिस मोह के झांसे में अटकी हुई थी, शनै–शनै उनका मोहभंग होने लगा। हालांकि आजाद भारत में नए –नए उद्योग, कल–कारखाने निर्माण किए गए आशा थी कि, देश का विकास विकास होगा। गरीबी, भुखमरी से जनता निजात पायेगी। बेहतर जीवन के सपने देखे गए, चुनावों में गरीबी उन्मूलन का नारा लगाया गया। पहले से देश की ग्रामीण जनता की अर्थ व्यवस्था स्वावलंबन पर आधारित थी, अपनी जरूरतों की वस्तुएं गाँव में ही बनाई जाती थी किंतु अंग्रेजों के काल से इस व्यवस्था को चोट पहुंचाई गई। महात्मा गांधी ने इन बातों को लेकर सजग किया था, पर सुने कौन? थोड़े बहुत प्रयास उनके काल में किए गए बाद उनके सब धरा का धरा। पर हालात पहले से बदतर होते रहे। अमूमन आज भी इन हालातों में कोई ज्यादा तब्दीलियाँ नहीं मिलती हैं। डॉ. अनिलकुमार शर्मा लिखते हैं " स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत आर्थिक दृष्टि से बहुत अधिक जर्जर था, इसलिए आज़ादी के समय देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनेक प्रकार के सपने देखे गए, लेकिन कुछ मामलों में देश की स्थिति आज भी वैसी ही है, जैसी आज़ादी से पूर्व थी।"१ अनेक कारण रहे हैं जिससे हालातों में आवश्यक बदलाव नही हो पाए। कुछ लोग इसे सरकार की असफलता मानते हैं, सरकार देश में निर्माण अकाल की स्थितियों तथा पाकिस्तान और चीन से हुई लड़ाइयों को इसका ज़िम्मेवार ठहराती है। कुछ भी हो आज़ादी के अनन्तर

देश की सरकार की नीतियों और भ्रष्ट प्रवृत्तियों ने देश की स्थितियों में बेहरती आ न पाई। विकास की बात केवल हवाई बनकर रह गई। अकाल, युद्ध, जाति–जाति, प्रांत – प्रांत, भाषा–भाषा को लेकर अंतर्गत कलह, धर्म–संप्रदाय के झगड़े, बम विस्पोट, बड़े–बड़े शहरों में हुए दंगे इसमें बीसवीं सदी बीत गई। देश के सम्मुख आर्थिक तंगहाली का मौहोल वैसे–ही बना रहा। जिससे अनेक संकट निर्माण हुए।

२१ वीं सदी में दुनिया की जो तरक्की हुई है, उसके बरक्स भारत में बसने वाला आम आदमी कितना सुखी हो पाया है? ऐसे कितने ही सवाल उभरकर आते हैं। उच्च वर्ग और मध्य वर्ग के मुकाबले निम्न वर्ग में जीवनयापन करने वाले आदमी को आज भी रोटी, कपड़ा और मकान सी जरूरतों की आपूर्ति में अपने आप को खपाना पड़ता हैं। अमीरों के सम्मुख वैज्ञानिक आविष्कारों से निर्मित सुविधाओं के अंबार के अंबार हैं। तो दूसरी तरफ गरीब की झोपड़ी में अधेरें के चिरपरिचित साए हैं। यह हाशिए का वर्ग है जो इस हालात के लिए अपने आप को और तकदीर को कोसता हैं, लाचार जिंदगी जी रहा है। भूख इस दौर की बड़ी समस्या है, और रोटी उसका समाधान।

अखिलेश 'अंजुम' जी बहुत खूब लिखते हैं–

"क्या बतलाएं जीवन में क्या कुछ पाया बाबूजी।।
अपने हिस्से में हरदम दुःख ही आया बाबूजी।।
तब गुलाम थे गैरों के अब अपनों के बंधुआ है,
आज़ादी का सूरज हमको रास न आय बाबूजी।।
ए जो– बीमार, भूके बच्चे और ये झुकी कमर,
हमने जीवन भर खटकर यही कमाया बाबूजी।।" २

हिंदुस्थान में मौजूद आथिक विषमता पर तीखे व्यंग्य करता नज़र आता है। दरिद्र जीवन के लिए अभिशप्त वर्ग की ख़स्ताहाल स्थिति के लिए किसकी नीतियाँ ज़िम्मेवार हैं यह तो शोध का विषय है। यहाँ पूंजीपति वर्ग उस नवाबी काल की याद दिलाता है। उनके घरों में भले ही आदमी न हो पर सुविधाएँ तमाम रहती हैं। फुटपाथ पर सोने वाले लोगों के नसीब में किसी बिगडैल–नशेड तथाकथित हाय प्रोफाईल के गाडी के नीचे कुचला जाना लिखा होता है। कितनी कोशिशों के बाद गरीब कुछ कमा पाता है, चंद हरकत से अमीर और अमीर हो जाता है। यही तो बुनियादी खराबी है इस ढांचे में, अतरू अदम गोंडवी जी सच्चाई वाला आइना दिखाते हैं–

"लगी है होड़ –सी अमीरी और गरीबी में,
ये पूंजीवाद के ढांचे की बुनियादी खराबी है।।
तुम्हारी मेज चांदी की तुम्हारे जाम सोने के,
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है।।" ३

बहरहाल आम आदमी का आर्थिक स्तर कितना ऊपर उठा है, चिंतनीय विषय है। आधुनिक काल प्रतियोगिता का काल है। सबकुछ कौन कितना दौड़ता है उसपर निर्भर है। पैसे की अंधी होड़ है। जिसके आगे नैतिकता के बहुत कम मायने शेष है। एक ओर अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए विवश अनगिनत लोग है तो दूसरी ओर काले धन की कमाई से सुविधाओं के सागर में गोते लगाने वाले उंगली पर गिने जाने वाले लोग है। इस विसंगति को लेकर हिंदी ग़ज़लकारों ने अक्सर बहुत– सी गज़लें लिखी गई हैं। जिससे कि हिंदी ग़ज़ल की सामाजिक प्रतिबद्धता नज़र आती है। सजग ग़ज़लकार कभी धनिकों की कारगुजारियों पर शुब्ध होता है, कभी नेताओं या नीति निर्माताओं पर शब्दों का आग बरसाता है, क्योंकि उसे श्रमिक, किसान, मजदूर से हमदर्दी हैं। वें जनपक्षधर है। उनकी जनधर्मिता परंपरागत है और वें निराला–दुष्यंत की परंपरा के गज़लकार है। इसलिए आज भी जो हालात बने हुए हैं उसपर प्रकाश डालते हुए देवन्द्र आर्य लिखते हैं–

"कुछ ख़ास ही चेहरों पर बरसती रही रौनक,
इस देश के मनहूस का चेहरा नहीं बदला।।
बदला तो कई बार किताबों में ये मौसम,
मजदूर के माथे का पसीना नहीं बदला।।" ४ या फिर
"फिर वो ही बारिश का मौसम, ख़स्ता हालत छप्पर की।।
रोज सवेरें लिख लेता है वो चेहरे पर दुनिया बाहर की।।"५

देश में व्याप्त आर्थिक असमानता ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया। पूंजी का असमान वितरण, महंगाई, श्रम की महत्ता का पतन, भौतिकता का आक्रमण, बेरोजगारी, दहेज़ की वजह से होने वाली हत्याएं, सुविधा की आपूर्ति के लिए किए जाने वाले अपराध, पैसे न होने के कारण होने वाली आत्महत्याएं इनकी फेहरिस्त बहुत लंबी हो सकती हैं। ऐसे में प्रतिबद्ध रचनाकार का आक्रोश करना स्वाभाविक है। वास्तव में, गरीबी मिटाने के वायदों का क्या हुआ? हर वक्त रोटी की फ़िक्र में रहने वाला भले ही व्यवस्था से सीधे यह सवाल न पूछे पर गज़लकार जरुर पूछता हैं। गज़लकार कहता है कि, किस ने विकास का परचम लहराया है? आज़ादी के बाद किसका विकास हुआ है ? कोई कहता है मुफलिसी का दावा सर हो गया है, पर वास्तव में मौसम क्या–से क्या हो गया है। गरीब को दो रोटियों की चाह रहती है, न कि वह चार मांगता है। किसी के बच्चे सज–संवरकर पाठशाला जा रहे हैं तो किसीके चाय की दुकान पर बर्तन मांजने। खेलने की उम्र में काम करने वाले बच्चे के दर्द को ग़ज़लकारों ने बराबर महसूस किया। उसके वास्तव को उजागर किया।

"वो मेरे बच्चों को स्कुल ले जाता था।।
उसका बेटा वही खोमचा लगाता था।।"६

अनेक तरह से हिंदी ग़ज़लकार आर्थिक वैषम्य पर अपना चिंतन प्रकट करते रहे हैं। इस वैषम्य के लिए जो जो जवाबदेही हैं उनसे बिना डरे सवाल पूछता हैं। जिसको रोटी–पानी चाहिए उन्हें कुछ भी नहीं, और जिनके पास यह सबकुछ है, उनको इन चीजों की कोई परवाह नहीं है। ऐसी ही आर्थिक विषमता पर करारा व्यंग्य करते हुए बेचौन श्याम कश्यप ने लिखा–

"किसी को बूंद मयस्सर नहीं है पानी की,
किसी की हौज में आबे हयात है यारों।।
किसी को दुनिया की हर खुशी गम है,
किसी के वास्ते गम ही निशात है यारों।।" ७

हिंदी ग़ज़लों में आए आर्थिक विमर्श में महंगाई जैसी समस्या पर भी काफ़ी लिखा गया है। महंगाई किसी भी देश की आर्थिक स्थिति को डांवाडोल करती है। उसके निर्माण होने के पीछे अनेक कारण होते हैं। हिंदी ग़ज़लकारों ने महंगाई की विकारलता को दर्शाया है। उसके कारण आम जनता के हुए हाल पर दृ ष्टिपात किया है। देश में 'महंगाई मार गई' की स्थितियां कई बार उभरी है। अदम गोंडवी जैसा ग़ज़लकार तो महंगाई की भट्टी में शराफ़त उबाल ने की बात करता है। इस सदी के हिंदी ग़ज़लों में महंगाई का यथार्थ रूप प्रस्तुत है। भगवत दुबे लिखते हैं –

"महंगाई का बोझ उठाते, कमर झुकी झोपड़ियों की,
वहां हवेलियों पर हवेलियाँ तनती रही हवालों पर।।"८

महंगाई को लेकर वास्तविकता यह है इसकी चपेट में निम्न वर्ग, निम्न मध्य वर्ग आता रहता है। निर्धनों के लिए तो महंगाई डायन

जैसी है। उसका बंदोबस्त करना सरकार का काम है। देश की राजधानी में उसके लिए सोचा जाता है। दिल्ली में अलग– अलग नीतियाँ बनायीं जाती है, कमिटियाँ बैठाई जाती है। पर वास्तव में कोई ठोस नीति बन पाई है, सोचने की बात है। महानगर के सर्द कमरों में बैठे आकाओं को जनता का दर्द कितना महसूस होता है? देश का बातूनी शहर दिल्ली की चर्चा भी कितनी खोखली होती है, दुनिया भर की बाते की जाती है, वाद–प्रतिवाद होते रहते हैं, किसी समस्या पर बनावटी समाधान ढूंढें जाते हैं, जुमले कसे जाते हैं, इसी को लेकर डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल जी धधकता वास्तव लिखते हैं,

"हिरामन बेज़ार है, उफ़ किस तरह महंगाई है।।
आपके दिल्ली में उत्तर आधुनिकता आई है।।" ६

आज बेरोजगारी की समस्या से देश के नौजवान जूझ रहे हैं। देश का भविष्य जिनके कन्धों पर दारोमदार है, वे ही नौकरी ना मिलने से लड़खड़ा रहे हैं। वास्तव में यह भी व्यवस्था का दोष है। बढ़ती हुई जनसँख्या के मुताबिक अवसरों का निर्माण करने में व्यवस्था कहीं चुक गई है। रोजगार के अवसरों को ढूँढते –ढूँढते नौजवान का आत्मविश्वास एक दिन दम तोड़ देता है, वह युवा स्वयं आत्महत्या कर अपना दम तोड़ देता है। तब सवाल उभर आता है, ग़लती किसकी? माँ–बाप ने जरूरतों का त्याग करके उसे पढ़ाया, वह भी खुद मेहनत कर के पढ़ा, उच्च शिक्षा हासिल की पर नौकरी नहीं। उदहारण ही दे तो, कितने शिक्षक भाई–बहन बिना–अनुदान पर बंधुआ मजदूर सम काम कर रहे हैं। अनेक तो २० –२५ साल तक कॉन्ट्रॅक्ट पर काम करने वाले मिल जाते हैं। चंद्रसेन जी हक़ीकत बयां करते हैं–

"गर इजाजत हो तो आउँ साहब // डिग्रियां अपनी बताऊँ साहब।।
आप रोजी से लगा दे अहसान, उम्रभर मैं न भुलाऊं साहब।।" १०

बेरोजगारी समस्या के पीछे भाई–भतीजावाद, भ्रष्टाचार जैसी बातें भी होती है। बेरोज़गार युवा की तंगहाली से ग़ज़लकार अपरिचित नहीं है, वह उनकी वेदना को वाणी प्रदान करता है। जगह–जगह अपनी डिग्रियों को लेकर घूमते युवाओं के प्रति उसकी सच्ची संवेदना है। अतरू वह काम की तलाश में सड़क–सड़क घूमने वालों को गिनने की बात करता है,–

"किसे फुरसत की फुरसत से सितारों को गिना जाए।।
चलो फुटपाथ पर सोये हजारों को गिना जाए।।
महकते गुसुओं के पेचों–ए–खम गिनने से क्या होगा,
सड़क पर घुमते बेरोजगारों को गिना जाए।।" ११

जहाँ एक ओर अमीरी–ग़रीबी, बेरोज़गारी या महंगाई जैसी समस्या ने देश के अर्थ जगत को तंग रखा है, तो दूसरी ओर देश में आधुनिक जीवन पद्धति के अनुरूप और विश्व की नई आर्थिक नीति के अनुसार 'बाज़ार' का मुहावरा खूब चल रहा है। बाज़ार ने हर किसी को प्रभावित कर रखा है। बाज़ार ही हावी हो गया है, उसने मनुष्य की नब्ज को परख कर उसे अपने कब्जे में ले लिया है। बाज़ार पूरी तरह से पूँजी पर निर्भर है, और पूँजी का बढ़ना दृघटना ग्राहकों पर अवलंबित है। इस बाजारवाद के अनेक दुष्प्रभाव भी आज सम्मुख आ रहे हैं। चीजों के क्रय–विक्रय से ही जुड़ा नहीं है, तो मनुष्य की भावनाओं–संबंधों से भी जुड़ गया है। बाजार ने उपभोक्ता संस्कृति को जन्म दिया। यहाँ 'हर वस्तु बिकती है' की अवधारणा का निर्माण हुआ। इसके कारण समाज में कितनी ही संकल्पनाओं का उदय हुआ, और विलय भी हुआ। इस व्यवस्था ने अनेक राष्ट्रों को अपने शिकंजे में ले रखा है। बिलकुल छोटी सी वस्तु से लेकर भारी भरकम विनाशक अस्त्रों–शस्त्रों तक बाजार में उपलब्ध है। आइए–पधारिए और जनाब खरीद लिजियें। इसके बहुत बड़े उदहारण दिए जाए तो– सरकार को बुलेट ट्रेन चलानी हैं, कभी चायना कहता हैं हम सामग्री देंगे, ट्रेनें बनाकर भारत को देंगे तो दूसरी ओर चायना का प्रतिस्पर्धक जापान भारत को यही सुविधाएँ देने के साथ–साथ बहुत ही कम रेट पर लोन देने को उतावला है। जब भारत को मिलिटरी के लिए फायटर हवाईजहाज ख़रीदने होते हैं, उन्हें बेचने के लिए रशिया, अमेरिका, जर्मनी और फ़्रांस में होड़ लग जाती है। आखिरकार फ़्रांस से राफेल खरीदें जाते हैं और उसके बाद घोटालों की चर्चा आरंभ हो जाती है। ऑनलाइन मार्केटिंग में अव्वल फिलफ्कार्ट को अमरीका की कंपनी वालमार्ट खरीद लेती है, तो अमेरिकी वोडाफोन कंपनी को भारत की बिरला कंपनी खरीद लेती है। कहने का आशय यह है की विश्व में तय की गई खुली अर्थ नीति के फलस्वरूप जगह–जगह होड़ लगी हुई है। आम आदमी छोटी–छोटी वस्तुओं में उलझा है, मध्यवर्ग फ्लैट, कार, मोबाइल आदि में मशगुल है। नेतागण योजनाओं के बहाने कुछ–न–कुछ कमाने में व्यस्त है तो बुजुर्वा वर्ग सबकों उलझाने में मग्न है। पूंजीवादी भूमंडलीकृत इस नई व्यवस्था की सच्चाई मुखर करते हुए, जहीर कुरेशी जी लिखते हैं,

"इक्कीसवी सदी के सपेरे हैं आधुनिक,
नागिन को वश करने के मंतर बदल गए।।
बाजारवाद आया तो बिकने की होड़ में,
अनमोल वस्तुओं के भी तेवर बदल गए।। १२

कुरेशी जी की बात सौ आने सच है। अब बाजार के कारण वस्तुओं के तेवर बदल गए हैं। बाज़ार में पैसा महत्वपूर्ण है। रिश्ते, नाते और संबंध बाज़ार के लिए उतने जरुरी नहीं हैं। अनेक प्रकार से बाजार धर्म–जाति–संस्कृति–समाज नीति और राजनीति को हवा देता रहता है। पहले भक्ति और आस्था पर आधारित तीज त्यौहार आज बाजार पर अवलंबित हो गए। संस्कृ ति भी उसके चंगुल से बच नहीं पाई। धर्म और राजनीति तो बाज़ार के असरदार औजार हैं। शहर में लोग अपने घरों तक को बेच कर बाज़ार को जाते हैं तो गज़लकार व्यथित हो जाता है। पहले तो घर घर जाकर मार्केटिंग की जाती थी, अब इंटरनेट, मोबाईल आदि वैज्ञानिक संसाधनों के जरिए वस्तु सीधे व्यक्ति तक आसानी से पहुँच जाती है। यह सजा–धजा, शोरगुल वाला बाज़ार है फिर आप मज़बूरी से आइए या व्यापार के बहाने हर स्थिति में बाज़ार आपका स्वागत करेगा,

"अपना–अपना माल सजाए सब बाज़ार में आ बैठे,
कोई कहे इसे मजबूरी, कोई कारोबार कहे।।' १३

देश की यह त्रासदी है कि यहाँ पहले श्रम की प्रतिष्ठा थी, पसीने के महत्त्व को सम्मान दिया जाता था। फिर वह खेती करने वाला किसान हो, खेतिहर मजदूर हो या हाथ से वस्तु बनाने वाले कारीगर हो सबका अपना निश्चित महत्त्व था। आज के दौर में यह घट रहा है। वास्तव में, भारत कृषि प्रधान देश है यहाँ मिट्टी को माँ मानने और किसान को राजा मानने की समृद्ध परंपरा रही है। लेकिन वही किसान जब साहूकार का सूद न चूका पाने से फांसी पर लटक जीवनयात्रा समाप्त कर देता है, तो हर संवेदनशील द्रवित हो जाता है। उसका शोषण अनेक स्तरों पर होता है। यहांतक कि अपने उत्पाद की कीमतें तय करने का अधिकार नहीं है। बारिश पर खेती अवलंबित रहती है। किसान को कभी सूखा कभी अकाल, बीज और खाद के दामों का बढ़ना, बच्चों की शिक्षा, बेटी का विवाह, सूदखोरों के बखेड़े ऐसी मुसीबतों से हरदम जूझना पड़ता है, सिंघल जी कहते हैं–

"सूदखोरों की एक अमानत है, खेत से जितने दाने निकले हैं।।
जो चूल्हा जला न हफ़्तों से, अब उसे जलाने निकले हैं।।"१४

निष्कर्षत स्पष्ट है,

1. हिंदी ग़ज़ल जनपक्षधर है। निराला और दुष्यंत की परंपरा का निर्वाह आगे भी होता रहा है।
2. आज़ादी के बाद देश में अनेक बदलाव हुए,परंतु आम आदमी की आर्थिक स्थिति बेहतर न हो पाई।
3. रोटी–कपड़ा और मकान की समस्या पर चर्चा करते हुते आधी सदी बीत गई।
4. बीसवीं सदी में समूचे विश्व में नूतन आर्थिक नीतियों का प्रचलन शुरू हुआ।
5. इक्कीसवीं सदी में नई आर्थिक नीतियों का असर दीखने लगा था, बावजूद इसके जो उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग और असमान आर्थिंक वितरण की समस्या वैसी ही कायम थी। जिसका हिंदी ग़ज़लों में खूब समाचार लिया गया।
6. असमान आर्थिक वितरण के कारण अनेक समस्याओं का निर्माण हुआ।
7. महंगाई जैसी समस्या ने आम आदमी की कमर तोड़ दी। जिसके कारणों को लेकर ग़ज़लकारों ने अनेक शेर लिखें। महंगाई पर व्यंग्य की भाषा में कुठाराघात किया।।
8. भारतीय समाज में अनेक कारणों से बेरोजगारी की गंभीर समस्या उभरी। जिसके कारण देश की आर्थिक व्यवस्था को धक्का लगा। इस समस्या पर भी ग़ज़लकारों ने अपना चिंतन प्रकट किया है।
9. बाज़ार किसी भी देश की अर्थ व्यवस्था को मजबूती देने का कार्य करता है। पर बाज़ार के अच्छे फायदों के साथ उसके कारण निर्माण हुई असंगत बातों ने ग़ज़लकारों को सोचने पर मजबूर कर दिया। जिसके स्पर्धात्मक और अनैतिक हरकत वाले पक्ष को उन्होंने खूब लताड़ा है।
10. श्रम की प्रतिष्ठा को ख़त्म करने वाली व्यवस्था को, किसान, मजदूर, कारीगर की समस्याओं को भी हिंदी ग़ज़लकारों ने पूरे मनोयोग के साथ उभारा है।

अन्ततोगत्वा इतना ही कि, इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़लों में अभिव्यक्त आर्थिक बोध बहुत सक्षम है। अनेक ग़ज़लकारों की ग़ज़लों में अन्य पक्षों के समान आर्थिक विमर्श उफान पर रहा है। हालांकि इसके लिए उन्होंने व्यंग्य भाषा का प्रयोग किया है। अमूमन यह ग़ज़लकारों के जनधर्मिता का परिणाम है। समकालीन मनुष्य की हर वेदना से जुड़ने का और समाज के यथार्थ को पूरे शिद्दत से अभिव्यंजित करने की आदत का असर है। समकालीन ग़ज़लकारों की ग़ज़लों को पढ़ने उपरान्त यह आशा और पुख्ता हो जाती है कि आगे भी हिंदी में यह परंपरा बनी रहेगी।

गज़लकार चन्द्र त्रिखा के शब्दों में कहे तो,
क्योंकर उम्र गुज़ारी लिख !
मक़सद की बीमारी लिख !
आधे सच की आदत छोड़,
पीर पराई सारी लिख ! १५

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, अनिलकुमार, साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल– डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान, पृ.२४८,
2. 'अंजुम,' अखिलेश, संपा.माधव कौशिक, समकालीन हिंदी ग़ज़ल संग्रह, पृ.१७
3. गोंडवी, अदम, समय से मुठभेड़, पृ. ५६
4. आर्य, देवेन्द्र, किताब के बाहर, पृ.४२
5. विज्ञानव्रत, संपा.अस्थाना रोहिताश्व, हिंदी ग़ज़ल के कुशल चितेरे, पृ.१२६
6. 'नदीम', अमरज्योति, आँखों में कल का सपना है, पृ. ३६
7. कश्यप, बेचौन श्याम आकाश को पढ़ा जाए, पृ.४४
8. दुबे, भगवत, चुभन, पृ.१००
9. अग्रवाल, गिरिराजशरण शिकायत न करो तुम, पृ.६३
10. विराट, चंद्रसेन, कचनार की टहनी, पृ.१२७–१२८
11. नदीम', अमरज्योति, आँखों में कल का सपना है, पृ.३७
12. कुरेशी, जहीर, पेड़ तनकर भी नहीं टूटा, पृ.१११
13. संपा.शेरजंग गर्ग, नया जमाना नई गज़लें, पृ.१४३
14. सिंघल, विजयकुमार, धुप हमारे हिस्से की, पृ.१५
15. त्रिखा, चन्द्र, संपा.माधव कौशिक, समकालीन हिंदी ग़ज़ल संग्रह, पृ.७७